International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 9 Issue 12 Ser. II || December 2020 || PP 81-86

पांचवीं अनुसूची एवं जनजातीय विकास

डा0 चन्द्रपाल
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिरसागंज, फिरोजाबाद

आदमी की सामाजिक प्रतिष्ठा और इज्जत बनती है उसके काम से, उसके काम की मान्यता से, उत्पादन के साधनों पर अधिकार से और अपनी व्यवस्था खुद चलाने से अधिकार से। इन सभी मामलों में अनुसूचित जनजातियों की हालत पहले से ही बहुत खराब थी। मेहनत उनके हिस्से में आयी थी और संसाधन दूसरों के परन्तु आज़ादी के बाद की स्थिति में व्यवस्था और ताकतवर लोगों के गठजोड़ के सामने वे लोग और भी ज्यादा मजबूर हो गए हैं। एक तो उनके पास बचे–खुचे उत्पादन के साथ उनके हाथ से निकलते जा रहे हैं। दूसरे आज गाँवों में लगभग अराजकता का माहौल है। इस माहौल में गाँव समाज के शेष संसाधनों पर लोगों के गुजारे की असलियत ओर अधिकारों को नकारते हुए कहीं गाँव के बड़े लोग, कहीं बाहर की छोटी बड़ी कंपनियों और कहीं सरकार खुद कब्जा करती जा रही है। आखिर ये लोग कहाँ जायें। कौन जाने जिंदगी के ऐसे कठोर संघर्ष में सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्म सम्मान सपने की ही बातें हैं।

यह एक भारी विडम्बना है कि प्रतिष्ठा के मामले में हमारे देश के सबसे स्वाभिमानी समाज आदिवासी समाज की हालत आज सबसे ज्यादा बदतर हो गई है। आदिवासी इलाकों में समूचे समाजों के संसाधनों पर अधिकार की अवमानना, उनकी परम्परागत स्वशासी व्यवस्था के नकारे जाने से वे व्यवस्था के सामने बेसहारा हो गए हैं। वन राज्य की सम्पत्ति है, इसलिए वनवासी के लिए जो युगों से उन्हीं वनों से अपनी जिंदगी बसर करते रहे हैं, वहाँ जीवन बसर करना अपराध हो गया है। उनका उन वनों में रहना भी कानून के खिलाफ हो गया। अगर आदिवासी हाथ में धनुष–बाण लेकर वन मं चला जाये तो अपराधी हो जाता है, उसके जानवर खुलकर जंगल में चरने निकल जायेंतो कांजी हाऊस पहुँच जाते हैं अब उसकी अपनी जमीन पर ही उसका कोई अधिकार नहीं है, अगर वह अपनी परंपरा के मुताबिक अपने देव की पूजा में और अपने उत्सव के समय मदिरा का सेवन कर लें तो अपराधी बन जाता है। जिंदगी के हर मामले में उसे सिर्फ इसलिए अपराधी करार दिया जा रहा है क्योंकि कानून उसके खिलाफ है। आदिवासी इलाकों में पूरे समाज का ही अपराधीकरण हमारे देश की उदार परम्परा पर सबसे बड़ा धब्बा है।

सबसे बड़े अफसोस की बात यह है कि यह सब हुआ और हो रहा है संविधान और कानून की दुहाई देकर। इतना ही नहीं यह सब किया जा रहा है एक ऐसी व्यवस्था के नाम पर जो अपने को न्याय, मुक्ति और आधुनिकता का प्रतीक मानती है। संविधान में ठीक करने के लिए जिनकों दायित्व दिया गया उनको इस दायित्व के बारे में कोई बोध तक नही। व्यवस्था की पहली कोशिश अपने को सही और उनको गलत साबित करने की होती है। कहा जाता है कि, आदिवासी समाज अपने को बदले नई व्यवस्था के अनुरूप अपने को विकसित करें, उसे समझाने की कोशिश होती रहती है।

इस तरह पहले तो इस बुनियादी विसंगति को सुधारने के लिए कोई कार्यवाही ही नहीं होती है और अगर कहीं कोई कार्यवाही शुरू की जाती है तो न जाने कहाँ जाकर किस तरह अटक जाय इसका भी भरोसा नहीं। इसके फलस्वरूप आज पूरे आदिवासी क्षेत्र में टकराव की स्थिति पैदा हो गई है। आज अगर कोई आदिवासी अपने समाज की परम्परा के मुताबिक चलता है तो वह कानून तोड़ता है, कानूनन उसके खिलाफ कार्यवाही की जाती है। क्या इससे भी अधिक खेद जनक कोई और स्थिति हो सकती है। आदिवासी इलाकों में ऐसा कोई भी कानून जो आदिवासी की अपनी सामाजिक परम्परा को अपराध बना दें तो यह संविधान की भावना के खिलाफ है।

यह सच है कि भारत में जनजातियों का जीवन अनेक समस्याओं से ग्रस्त है, लेकिन उनकी समस्याओं पर विचार करते समय इस तथ्य पर ध्यान देना आवश्यक है कि यहाँ कि अधिकांश जनजातियाँ अपने मूलरूप को छोड़कर एक नया परिवेश ग्रहण कर चुकी हैं। अनेक जनजातियों ने कर लिया है कि वे बाह्य समूहों के साथ एक संयुक्त समूह के रूप में बदल गई है। यह रूपान्तरण इस सीमा तक हुआ है कि अनेक जनजातियों की एक पृथक पहचान ही समाप्त हो चुकी है। इसे हमसात्मीकरण की दशा कह सकते हैं। सात्मीकरण का ही परिणाम है कि अधिकांश जनजातियाँ आज कृषक समूहों के रूप में है। अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक जीवन में ऐसी अनेक विशेषताओं का समावेश हुआ है जो सभ्य समूहों में पायी जाती है। इस दृष्टिकोण से जनजातीय समाजों के बदलते हुए परिवेश को समझकर ही उनके जीवन को अधिक संगठित बनाया जा सकता है।

सामाजिक बदलाव–

भारत की अनेक जनजातियों की सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक विशेषताओं में आज व्यापक बदलाव आया है। यह बदलाव (परिवर्तन) बाहरी संपर्क और आधुनिकीकरण का परिणाम है। प्रो. एम.एन. श्रीनिवास ने ऐसी अनेक जनजातियों का उल्लेख किया है, जिन्होंने उच्च जाति के हिन्दुओं की विशेषताओं का अनुकरण करके अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए– उराँव जनजाति न केवल हिन्दुओं के देवी–देवताओं को मानने लगी हैं बल्कि खान–पान, कर्मकाण्डों की पूर्ति और संस्कारों को मानने लगी हैं बल्कि खान–पान, कर्मकाण्डों की

पूर्ति और संस्कारों के क्षेत्र में भी वह पूर्णतया हिन्दुओं के समान हो चुकी है। भारत के उत्तरी–पूर्वी सीमा प्रान्तों की अनेक जनजातियों व म.प्र. की भील आदि अपनी सभी सामाजिक एवं सांस्कृतिकविशेषताओं में ईसाईयों के ही समान हैं। एक जनजाति जिस किसी बाहरी समूह के जीवन से प्रभावित हुई है, उसी के अनुसार उसके परिवार, गौत्र तथा नातेदारी व्यवस्था का निर्धारण होने लगा है। जन जातियों में भी अब संयुक्त परिवार के स्थान पर एकाकी परिवारों की संख्या बढ़ रही है। परम्परागत रूप से जनजातियों में आयु, वंश और नातेदारी के आधार पर व्यक्ति को एक विशेष सामाजिक स्थिति प्रदान की जाती थी लेकिन अब व्यक्ति अपनी कुशलता, शिक्षा सम्पत्ति और राजनीतिक शक्ति को बढ़ाकर एक विशेष स्थिति अर्जित करने लगे हैं। अधिकांश जनजातियाँ युवा ग्रहों को अपने पिछड़ेपन का प्रतीक मानकर इन्हें तेजी से समाप्त करने में लगी हैं। परिस्थितियाँ चाहे कुछ भी हों, जनजातियों में विनिमय विवाह, परीक्षा विवाह, हठ विवाह तथा परिवीक्षा विवाह के स्थान पर कर्मकाण्डीय विधि से सम्पन्न होने वाली विवाहों की संख्या बढ़ती जा रही है। यह बदलाव सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में जनजातियों के सात्मीकरण का उदाहरण है।

रहन–सहन–

इस क्षेत्र के जनजातीय लोग अपना घर स्वयं बनाते हैं, इनके घर प्रायः मिट्टी के बने होते हैं, जिनकी छत घास, पत्तों तथा खपरेल (कवेलू) से ढकी जाती हैं। फलिया में कहीं–कहीं रद्दे (कच्ची ईंटों) और पत्थरों से भी मकान बनाए जाते हैं। सामानयतः आदिवासी अपने मकानों में स्थानीय रूप से उपलब्ध निर्माण सामग्री का ही प्रयोग करते हैं। ये अपने मकान की लंबाई व चौड़ाई उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखकर निश्चित करते हैं। सामान्यतः इनके धर 18 फीट (12 हाथ) लंबे एवं 14 फीट (9 हाथ) चौड़े होते हैं। एवं लगभग 10–12 फीट ऊँचे होते हैं, परन्तु दरवाजे बहुत छोटे होते हैं, जिनमें झुककर प्रवेश करना पड़ता है। आमतौर से घरों में खिड़कियों का प्रचलन नहीं है, परन्तु कमरे के बाहर लगभग 6–8 फीट (4–6) हाथ का बरामदा होता है जिसे स्थानीय भाषा में ढालिया कहा जाता है। घर के सामने 5–6 फीट की दूरी पर ये बाँस या झाड़ियों की बाड़ बना देते हैं। किन्तु वर्तमान बदलते समय में इनके घर की लंबाई व चौड़ाई भी अधिक होती है व उनका स्वरूप भी बदलता जा रहा है पहले की अपेक्षा कुछ परिवार अब पक्के घर भी बनाते हैं

आर्थिक रूप से विपन्न होने के कारण इनके घरों में नाममात्र का सामान होता है। सामान्यतया इनके घरों में एक–दो खाट, कुछ मिट्टी के बर्तन, अनाज पीसने की चक्की, बाँस का झूला, गुदड़िया एवं आवश्यक कृषि के उपकरण हल, फावड़ा, कुदाली, नली आदि होते हैं। अनाज के भण्डारण का कार्य ये मिट्टी की कोठियों में करते हैं। इनमें लड़के का विवाह होने के उपरांत उसके रहने के लिए समीप ही अलग झोपड़ी बना देते हैं।

पहनाव –उढ़ाव–

इस क्षेत्र के जनजातीय लोगों का पहनावा बहुत साधारण होता है। ये लोग रंगीन वस्त्र पहनने के बहुत शौकिन होत हैं। जनजातीय पुरूषों का पहनावा सामान्यतया कुर्ता या अंगरखी एवं तंग धोती है जिसे जिसेठेपाड़ा भी कहा जाता है। पुरूष सर पर सफेद साफा (पगड़ी) पहनते हैं जिसे पोत्या भी कहा जाता है। गरीब लोग सिर पर कम लंबाई की पगड़ी छोटे बच्चों को मात्र कमीज पहनाई जाती है व नीचे चड्डी आदि कुछ भी नहीं पहनते हैं व छोटी लड़कियों को ब्लाउज व घाघरा पहनाया जाता है। स्त्रियाँ सामान्यतः काफी चटख रंगों के वस्त्र पहनना पसंद करती हैं। ये परम्परागत पोशाक लुगड़ा (साड़ी), कांचली (चोली), घाघरा पहनती हैं। वृद्ध महिलाएँ जकड़ी (अंगरखी) पहनती हैं, विधवा महिलाएँ काले या कत्थई रंग के कपड़े पहनती हैं। दूरस्थ क्षेत्रों मेंरहने वाले कुछ लोग या परम्परागत लोग केवल पतली लंगोटी पहनते हैं जिसे काछड़ी कहा जाता है व उपर शरीर पर कोई भी वस्त्र धारण नहीं करते थे। लेकिन वर्तमान बदलते दौर में पुरूष कुर्त्ता, घोती व पगड़ी पहनने या साफा आदि नहीं बांधते हैं। परम्परागत लोग कंधे या सिर पर गमछा या तौलिया रखते हैं। शिक्षित युवा केवल पेंट–शर्ट, ही पहनते हैं, बच्चे अब नग्न नहीं रहते बल्कि पेंट–शर्ट, कमीज नेकर या अन्य कपड़े पहनते हैं। लड़कियाँ कुर्त्ता–पायजामी एवं कमीज–घाघरा या ब्लाउज– घाघरा व ओढ़नी पहनती हैं, वृद्ध पुरूष या महिलाएँ भी बहुत कम या यह कहें न के बराबर लंगोटी या परम्परागत वस्त्र धारण नहीं करते हैं। शादी–विवाह, तीज–त्यौहार धार्मिक अवसर पर या हाट–बाजार जाते समय ये नये या धुले साफ वस्त्र पहनते हैं।

खान–पान–

खान–पान स्वरूप व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। सम्पन्नपरिवारों में अच्छा व गरिष्ट भोजन खाया जाता है। जबकि दयनीय आर्थिक स्थिति वाले परिवारों में पेट भरने हेतु रूखा–सूखा खाया जाता है। आदिवासी अंचल में सामान्य आर्थिक स्थिति वाले परिवार ही अधिकांश हैं। अतः आदिवासी हो या गैर–आदिवासी सभी का मुख्य भोजन मक्का है। इन लोगों द्वारा मक्का पूरे वर्ष भर खाई जाती है जबकि गैर–जनजातिय परिवार इसे मात्र वर्षा व सर्दियों में ही खाते हैं। आज के लगभग 50 वर्ष पूर्व आदिवासियों द्वारा गेहूँ का प्रयोग नहीं किया जाता था, परन्तु मक्का की पैदावार नियमित न हो पाने, अकाल पड़ने एवं सरकार द्वारा दुष्काल में गेहूँ वितरण करने के कारण गेहूँ का प्रचलन एवं सरकार द्वारा दुष्परिणाममें गेहूँ व चावल का वितरण किया जाता है। परिणामस्वरूप ये लोग मक्का के स्थान पर गेहूँ व चावल का प्रयोग भी करने लगे हैं।

आर्थिक तंगी के कारण ये लोग घी व तेल का प्रयोग बहुत ही कम अल्प मात्रा में व त्यौहारों पर करते हैं। इनमें दाल व सब्जी के प्रयोग का प्रचलन नहीं के बराबर है। सामान्यतया इनके द्वारा भोजन में प्याज लहसुन का मसाला एवं छाछ आदि का प्रयोग किया जाता है। भील गेहूँ, चावल और माँस का प्रयोग तीज– त्यौहार एवं जातीय भोज के अवसर पर दिया करते हैं। सामान्य दिनों में मक्का की रोटी और राबड़ी का राबड़ी का प्रयोग करते हैं। सब्जी का

प्रयोग बहुत कम करते हैं, मात्र उन्हीं सब्जियों का प्रयोग करते हैं जो इनके यहाँ होती है। इसी प्रकार दालों का प्रयोग भी करते हैं। दाल में ये चने व उड़द की दाल ही खाते हैं। भील दूध का प्रयोग भी नहीं करते हैं, केवल छाछ का प्रयोग करते हैं एवं घी बेच देते हैं। आजकल ये लोग दूध का प्रयोग भी चाय में करने लगे हैं, ये लोग चीनी का प्रयोग कम व गुड़ का अधिक प्रयोग करते हैं।

सामूहिक भोज में एवं विशेष अवसरों के भोज में गुड़ की लापसी एवं कतली आदि बनाने का प्रचलन है। इसके अतिरिक्त चूरमा, घुघरी (उबला हुआ मक्का एवं गेहूँ) अक्सर बनाए जाते हैं। मांसाहारी भील परिवार परि अधिकांशतः किया जाता है तो पाड़े का माँस खाते हैं। यदि समारोह में पूरे गाँव को आमंत्रित किया जाता है तो पाड़े का माँस आवश्यक रूप से बनाया जाता है। विशेष अवसरों पर शराब का प्रयोग भी बहुतायत से किया जाता है। त्यौंहारों जैसे – राखी, दीपावली, होली आदि पर विशेष भोजन बनाया जाता है। जिसमें विशेष रूप से मीठे चावल,खीर व मिठाई आदि बनाते हैं। शादि के अवसर पर मीठे चावल के अतिरिक्त सादे चावल, कसार एवं लापसी भी बनाते हैं।

अकाल के दिनों में लोग जंगली, अनाज माल, बट्टी, कुटी कोदरा हमलायी और सामा का प्रयोग करते हैं जो वर्षों तक पड़ा रहने के खराब नहीं होता है। ये लोग फलों का प्रयोग सामान्यतया नहीं करते हैं, परन्तु कुछ स्थानीय जंगली फल–फूल, बेर खजूर, महुआ आदि का प्रयोग करते हैं।

ये लोग सामान्यतः दिन में दो बार भोजन करते हैं । प्रातः काम पर जाने से पहले राबड़ी एवं दोपहर को खेत से काम करके आने के बाद व शाम को भोजन करते हैं। परन्तु आजकल घर से थोड़ा खाकर जाते हैं और कुछ भोजन साथ लेकर जाते हैं जिसे कार्यस्थल पर दिन में खा लेते हैं। ये लोग देर रात्रि को भोजन नहीं करते हैं। परंपरा के अनुसार ये (भील) लोग माँसाहारी होते हैं। पहले ये गाय, बकरी का आजकल पाड़े, बकरे, मुर्गे, हिरण, तीतर, बटेर आदि का माँस खाते हैं। ये लोग मछलियाँ भी खाते हैं। भील माँस कभी बाजार से नहीं खरीदते हैं स्वयं आखेट कर प्राप्त करते हैं। इस क्षेत्र की जनजाति में शराब का बहुतायत से किया जाता है। ये अक्सर महुए से स्वयं शराब तैयार करते हैं जो काफी सस्ती व अधिक नशा देने वाली होती है। शराब तैयार करते हैं जो काफी सस्ती व अधिक नशा देने वाली होती है। शराब का प्रयोगसामान्यतः शाम को एवं विशेष अवसरों पर बहुतायत से किया जाता है। शराब बनाने का भी इनका अपना विशेष अवसरों पर बहुतायत से किया जाता है। शराब बनाने का भी इनका अपना विशेष तरीका है। मिट्टी के बड़े बर्तन में जिसे गोठी कहते हैं महुओं को 7–3 दिन तक भिगो देते हैं एवं इसमें थोड़ी लजाधुर की छाल तथा अन्य वस्तुएँ डाल देते हैं। महुए के इन फूलों को ढककर उबालते हैं। गोठी में एक छेदकर बाँस की एक नली बाहर निकालकर दूसरे बर्तन में लगा देते हैं। इससे भाप निकालकर दूसरे बर्तन में ठण्डी होती रहती है। यही महुआ की देशी शराब कहलाती है। इन लोगों द्वारा अतिथि सत्कार भी मदिरा द्वारा किया जाता है जिसे सम्मान सूचक माना जाता है।

भील समुदाय में भगत सम्प्रदाय के लोग पूर्णतया शाकाहारी होते हैं एवं ये लोग शराब एवं माँस का प्रयोग नहीं करते हैं। इस प्रकार इनका भोजन बहुत ही सादा होता है एवं इसमें किसी प्रकार का दिखावा नहीं होता है। इतना ही नहीं छोटे बच्चों के लिए भी कोई विशेष भोजन असंतुलित कहा जा सकता है। जिसमें पौष्टिक तत्वों का नितान्त अभाव रहता है।

संस्कृति व धार्मिक बदलाव –

भारत की जनजातियों में विभिन्न प्रकार के अनेक सामाजिक सांस्कृतिक आचरण और रीति–रिवाज प्रचलित हैं। अनेक जनजातियाँ दीर्घकाल से गैर–जनजाति समूहों के संपर्क में भी आ रही हैं जिससे यह संभव है कि अपने रीति–रिवाजों व अपनी प्रथाओं के रूढ़िगत स्वरूपों में कोई परिवर्तन आया हो। सामान्यतः सामाजिक व्यवहार में जनजाति समाज अधिकांशतः अपनी खुद की परम्पराओं को ही प्राथमिकता देता है। उनका आचरण मुख्यतः उनकी अपनी सामाजिक प्रथाओं के अनुरूप होता है। ये प्रथाएँ आमतौर से विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और छोटे–मोटे अपराधों के लिए सामुदायिक न्याय पद्धत्ति संबंधी होती हैं इसलिए जनजाति समाज के रिवाजी कानूनों का अध्ययन जहाँ उनके समाज को समझने के लिए उपयोगी है वहीं उनके क्षेत्र पर प्रशासन और कोई भी कार्य करने के लिए आवश्यक भी है।

सतवीं पंचवर्षीय योजना के कार्यकारिणी समूह ने मान्यता प्रदान करते हुए इस प्रकार संस्तुति प्रदान की है किसी प्रथा या परंपरा के हृदय में प्रवेश करना इसलिए आवश्यक है कि यह निश्चय किया जा सके कि जनजाति समाज पर वह किस सीमा तक लागू की जा सकती है। इस प्रकार के संकलनकर्त्ता पदाधिकारी के किसी भी गलत फैसले के बड़े गंभीर परिणाम हो सकते हैं। इस पृष्ठभूमि में इस तरह के संग्रह को ''रिवाजी कानून'' की संज्ञा देना ओर उसे राज्य सरकार या भारत सरकार की और से प्रकाशित करवाना खतरनाक भी हो सकता है, खासतौर से जब ऐसे मान्यता प्राप्त जनजाति संस्थान न हों जिनसे इन ''रिवाजी कानूनों'' की पुष्टि कराई जा सके। इस प्रकार के संग्रहों का शीषर्क शायद ''रिवाजी कानून'' के स्थान पर ''परम्परागत जनजातीय प्रथाएँ'' रखा जाना चाहिए। इससे उनमें संशोधन करने का रास्ता खुला रहेगा।

शादी –विवाह –

विवाह मानव जीवन में एक परिवर्तन कर देता है। इसके माध्यम से पुरूष एक जीवन सहचरी को प्राप्त करता है और नीरस जीवन को रसमय बना लेता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते एकाकी मानव का अस्तित्व शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। परिवार में रहकर की मनुष्य समृद्ध एवं प्रगतिशील बना है। थौमसन का कथन है कि ''मनुष्य पक्षियों से यह सिख ले कि विवाहोपरान्तआनन्द–मिलन की परिसमाप्ति के बाद भी वह अपनी परिणीता के साथ प्रेम के गीत गावे और उसे उपेक्षित भावना से अपमानित न करें।

भील समाज में विवाह कर्म–काण्ड या संस्कार नहीं माना जाता है। इनमें यह संस्था अस्थाई अथवा तोड़ी जाने वाली मानी जाती है। यदि भील पत्नी के साथ नहीं रहना चाहती है तो वह अन्य पुरूष के साथ रह सकती है, परन्तु दूसरे व्यक्ति को केवल वधू मूल्य चुकाना पड़ता है। इस प्रकार इस जनजाति में विवाह का मुख्य आधार वधू मूल्य ही है।

इनमें विवाह सामान्य तथा युवती के वयस्क होने पर किया जाता है। अविवाहित को समाज में अच्छी भावना से नहीं देखा जाता है जैसे ही भील लड़का या लड़की वयस्क होते हैं, अपना जीवन साथी चुन लेते हैं, इनमें विवाह की उम्र महत्वपूर्ण नहीं होती बल्कि शारीरिक क्षमता महत्वपूर्ण होती है। इनमें गैर–भीलों के साथ विवाह को वैध नहीं माना जाता है। भील सामान्यतया निकट के फलिया से ही विवाह करना पसन्द करते हैं। इनमें जीवन–साथी चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता है, परन्तु वधू–मूल्य (दापा) देना आवश्यक होता है एवं इसके अभाव में विवाह नहीं होता है। वधू–मूल्य (दापा) जो पहले बहुत कम था आज बढ़कर यह राशि 10–1 हजार तक हो गई है। इनमें लड़के व लड़की के विवाह से पूर्व मिलने को समाज द्वारा मान्यता प्रदान की गई, परन्तु यौन–संबंध पूर्णतया वर्जित है।

भीलों में विवाह सामान्यतया लड़के व लड़की के माता–पिता या अन्य संबंधियों द्वारा तय किये जाते हैं, लेकिन इसमें लड़के व लड़की की सहमति अवश्य ली जाती है। हिन्दू समाज की भाँति भीलों में भी निकट संबंधियों में विवाह एवं संबंध स्थापित करना पाप समझा जाता है। विवाह से पूर्व वधू पक्ष द्वारा तय की गई राशि (दापा) वर पक्ष को विवाह से पूर्व निश्चित तिथि तक चुकाना पड़ती है। वर्तमान में इन जनजातियों में विवाह संबंध व रीति–रिवाज पहले जैसे ही इनमें किसी भी तरह का बदलाव देखने को नहीं मिलता है।

उत्सव एवं त्यौहार –

इनके द्वारा हिन्दू जातियों व अंचल में होने वाले सभी उत्सवों एवं त्यौहारों को मनाया जाता है। ये लोग सामान्यतया होली, दीपावली, रक्षाबंधन, मकर संक्रांति, जन्माष्टमी, नवरात्रि आदि पर्व मनाते हैं। उत्सवों तथा पर्वों का इनके जीवन में विशेष महत्व है। ये सभी त्यौहार एवं उत्सव बड़ी उमंग एवं हर्ष के साथ मानते हैं। इनके द्वारा होली व नवरात्रि पर्व विशेषतौर से मनाया जाता है।

होली का पर्व भील एक माह पूर्व मनाना प्रारंभ कर देते हैं। होलिका दहन से एक माह पूर्व ही हिन्दुओं के समान होली का 'थम्भ' गाढ़ दिया जाता है। प्रतिदिन रात्रि को स्त्री–पुरूष यहाँ इकट्ठे होकर नाचते व गाते हैं। ये लोग होली का दहन बिना किसी मुहूर्त के अर्द्धरात्रि के पश्चात् कर देते हैं। होली के दुसरे दिल धुलंडी को ये बड़े हर्षोल्लास से मनाते हैं, पास–पडौस के सभी घरों व रिश्तेदारों के यहाँ पर राम–राम हेतु जाते हैं। इस अवसर पर शराब का बहुतायत से प्रयोग किया जाता है।

दीपावली का पर्व भी इन लोगों के द्वारा बड़े उत्साह से मनाया जाता है। दीपावली से पंद्रह दिन पूर्व ही तैयारियाँ प्रारंभ कर दी जाती हैं। घरों की साफ–सफाई, लीपाई–पुताई आदि का कार्य किया जाता है। दीपावली पर विशेषतौर से घरों में मांडवे मांडे जाते हैं। दीपावली का मुख्य पर्व धनतेरस से ही प्रारंभ होकर भैया दूज तक चलता है। धनतेरस के दिन भील महिलाओं द्वारा देवी–देवताओं की पूजा कर देर रात्रि तक मंगल गीत गाए जाते हैं। चौदस के दिन का विशेष महत्व है, जिसे ये लोग 'काली चौदस' कहते हैं। इस दिन पूर्वजों के स्मारकों की विधि–विधान से स्थापना की जाती है। दीपावली के दिन दिए जलाकर एवं पकवान बनाकर त्यौहार को हर्षोल्लास से मनाया जाता है। भीलों में इस पर्व पर पशुओं को सजाने की परम्परा भी है। दीपावली पर भीलों द्वारा 'हीड़ा' गीत गाया जाता है। इस 'हीड़ा' गीत में पृथ्वी व पशुओं की प्रशस्ति की जाती है।

इस प्रकार भीलों द्वारा दीपावली का पर्व भी विशेष उत्साह के साथ मनाया जाता है, इनके द्वारा रक्षाबंधन, नवरात्रि आदि पर्व भी मनाए जाते हैं। नवरात्रि पर गबरीनृत्य का आयोजन विशिष्टता है।

धार्मिक विश्वास –

हर जनजातीय समुदाय के अपने धार्मिक विश्वास हैं वे अलौकिक शक्तियों, भूतों और आत्माओं के अस्तित्व पर यकीन करते हैं। आत्माओं का आर्शिवाद प्राप्त करने के लिए कई तरीकों के धार्मिक कृत्य किए जाते हैं। जनजातीय धर्म आत्माओं और अलौकि शक्तियों में विश्वास रखते हैं, इसलिए इन धर्मों को जीववाद कहा जाता है।

जनजातीय लोगों का विश्वास है कि बादल की गरज, बाढ़, वर्षा आदि का स्त्रोत अलौकिक शक्तियाँ ही हैं। उनका यह भी मानना है कि जंगल, नदी, पहाड़ आदि हर चीज की अपनी–अपनी नियामक आत्मा है। मृत्यु के बाद लोग आत्माओं के रूप में जीवित रहते हैं या बच्चों के रूप में फिर जन्म लेते हैं। उनका मानना है कि मृत पुरखों की आत्मा में उनके भाग्य को निर्धारित करने की शक्ति है। बीमारियों को बुरी आत्माओं का असर माना जाता है। जनजातीय लोगों की मान्यता है कि समुचित धार्मिक कृत्यों से बीमारियाँ दूर की जा सकती हैं। भील जनजाति का मानना है कि मृत्यु के बाद भी आत्मा बनी रहती है। टोड़ा लोग भी अपने पुरखों की पूजा करते हैं वे भैंसों को इस विश्वास के साथ पीट–पीटकर मार डालते हैं कि वे मृत व्यक्ति की आत्मा से मिलेंगी। प्रकृति पूजा भी जनजातीय धर्म का एक पक्ष है। भील जनजाति समय–समय पर अपने पूर्वजों की आत्माओं को खुश करने के लिए धार्मिक आयोजन, कुल देवी की पूजा, पूर्वजों का अनुष्ठान मुर्गा/बकरी बलि, पूजा पाठ आदि करते हैं। इसके द्वारा मृत आत्मा या पूर्वजों को खुश एवं संतुष्ट किया जाता है।

ईश्वर, मनुष्यों और प्रकृति के बीच संबंध धर्म जोड़ता है। इस संबंध को उजागर करने और देवलोक व इहलोक का माध्यम बनाने में आदिवासी बड़वे (पुरोहित व धार्मिक व्यक्ति, ओझा) का विशेष महत्व होता है। वह बिरादरी का मुखिया होता है जो वंशानुगत होता है। विश्व के सभी जनजातीय व गैर–जनजातीय ग्रामीण समाजों में शमन (ओझागिरी)

व्यापक रूप से पाया जाता है। इसके अंतर्गत अंधविश्वास और झाड़फूक के वे दकियानूसी लटके शामिल हैं जो इस शमनवाद के सिद्धांत पर आधारित है। कोई रूह या आत्मा किसी अन्य जीवित व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करके तथा उस पर हावी होकर उससे तरह–तरह के कृत्य शरीर में प्रवेश करके तथा उस पर हावी होकर तरह–तरह के कृत्य और व्याभिचार करा सकती है। इस प्रकार की क्रिया को कराने वाले शमन (ओझा या बढ़वे) के अनेक समाजों में ओझागिरी प्रचलित है। जिन समाजों में ओझागिरी प्रचलित है। उनमें ज्यादातर बड़वे या ओझा विश्वास चिकित्सक अथवा 'जनसाधारण का नीक हकीम' जैसा काम करता है। ये पीड़ित व्यक्ति के विभिन्न जादू–टोने व पूजा–अनुष्ठान करते हैं और उन्हें वनोषधियों के नुस्खे बताते हैं। जब ये सभी नाकामयाब सिद्ध हो जाती है तो बढ़वे 'भूत–वयार' 'शय या आत्मा' आदि से परामर्श करके बाधा शान्ति का उपाय बताता है। उपायों में हवन, टोना–टोटका, पशुबलि आदि कोई भी अद्भुत कृत्य हो सकता है। अंधविश्वास, महामारी अप्रत्याशित प्राकृतिक विपत्तियाँ, भूत बाधा और एक–दूसरे पर जादू–टोना करने–कराने का कार्य आदि बातें ओझागिरी (बड़वा) के अस्तित्व को बनाए हुए है।

आर्थिक बदलाव–

जनजातियों की अर्थव्यवस्था उन्नत समाज की अर्थव्यवस्था से नितान्त भिन्न होती है। वास्तविकता तो यह है कि वे आधुनिक अर्थवाले विकास की आरम्भिक सीढ़ी पर है और औद्योगिक नगरीय समाज इसके सर्वोच्च शिखर पर है। आदिवासी समाज अत्यंत सरल होता है और इनकी निजी आवश्यकतायें बहुत सीमित होती हैं। इन सीमित आवश्यकताओं के लिए ये लोग मुख्यतः प्रकृति पर निर्भर रहते हैं। वन न केवल इनके प्रिय निवास क्षेत्र रहे हैं बल्कि आजीविका के स्त्रोत भी रहे हैं। वनों से प्राप्त कंद–मूल फल आदि इनके मुख्य भोजन रहे हैं।

अब स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन हो गया है, हमारी आधुनिक अर्थव्यवस्था में वन राज्य की सम्पत्ति है और राजस्व का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। फलस्वरूप राज्य ने वनों से आदिवासियों के असीमित अधिकार को समाप्त कर दिया। इस तरह सदियों से वनों को अपना मानने वाला आदिवासी जो कभी मालिक हुआ करता था। आज वे उसी के दोहन के मजदूर बन गए हैं। अब परम्परागत अधिकारों और रियायतों को वे लोग अपनी आय के संपूरक के रूप में उपयोग करते हैं। सिमटते हुए वनों और उन पर निरन्तर बढ़ते प्रतिबंधों एवं दबावों के कारण आदिवासी लोग कृषि और पशुपालन की और मुड़े हैं।

जनजातियों का जीवन–यापन काफी दुष्कर है। सभी सक्षम, स्त्री–पुरूष काम करते हैं। कुल पुरूषों में लगभग दो तिहाई (56.95 प्रतिशत) तथा कुल स्त्रियों में लगभग आधी (48.3 प्रतिशत) किसी न किसी काम में लगे हैं ये औसत राज्य के क्रियाशील औसत पुरूषों (51.51 प्रतिशत) तथा स्त्रियों (22.82 प्रतिशत) की तुलना में बहुत अधिक है, साथ ही कृषि ही इनका मुख्य व्यवसाय है। कुल कार्य करने वाले आदिवासियों में से 93 प्रतिशत लोग किसी न किसी तरह से खेती से जुड़े हैं। इनमे से एक तिहाई लोग शुद्ध खेतिहर मजदूर की हैसियत से काम करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इसके अलावा पशु–पालन, वनोपज वस्तुओं का संग्रहण एवं वानिकी, विविध निर्माण कार्यों में श्रमिक तथा कुछ परम्परागत वस्तु निमार्ण इनके मुख्य व्यवसाय हैं। स्वतंत्रता के बाद उनमें शैक्षणिक विकास हुआ है फलतः उनको विविध सरकारी व गैर–सरकारी नौकरियों में भी व्यवसाय मिला है।

राजनैतिक बदलाव –

परम्परागत रूप में सभी जनजातियों एक पृथक राजनीतिक इकाई के रूप में थी तथा जनजातीय कानूनों के अनुसार मुखिया के द्वारा लोगों के व्यवहारों पर नियंत्रण रखा जाता था। स्वयं मुखिया का पद भी आनुवांशिक था । समाज में व्यक्तिगत को प्राप्त होने वाली स्थिति और अधिकारों को निर्धारण भी जनजाति के गोत्रीय संगठन तथा मुखिया द्वारा किया जाता है। आज राजनीतिक क्षेत्र में जनजातीय समूहों तथा सभ्य समाजों की मनोवृत्तियों और व्यवहार के तरीकों में कोई विशेष अंतर दिखाई नहीं देता है। वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनजातीय समूहों को अन्य लोगों के समान ही वोट देने ओर चुनाव लड़ने का अधिकार है। इसके फलस्वरूप जनजातियों में अपने अधिकारों के प्रति न केवल एक जागृति पैदा हुई है। बल्कि उन्होंने चुनी हुई पंचायतों को अपनी परम्परागत बिरादरी पंचायतों से कहीं अधिक महत्व देना आरंभ कर दिया है। जनजातीय लोगों ने भी अब अखिल भारतीय स्तर के राजनीतिक दलों की सदस्यता ग्रहण करके राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना आरंभ किया है। इससे जनजातीय क्षेत्रों में भी अब उसी तरह के संघर्ष और गुटबंदी की घटनायें देखने को मिलती हैं जिस तरह यह सभ्य समूहों में पायी जाती है। अनेक जनजातियाँ अपने पृथक राजनीतिक दल बनाकर भी सरकार से विभिन्न तरह की मांगे करने लगी हैं। इस राजनीतिक संक्रमण के फलस्वरूप जनजातियों में नेतृत्व का परम्परागत रूप बिल्कुल समाप्त हो चुका है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- मेहता, प्रकाशचन्द्र, 1993, भारत के आदिवासी, शिवा पब्लिशर्स, उदयपुर
- प्रसाद,डॉ.भागीरथ, 1996, आगे आयें लाभ उठायें,जनसम्पर्क विभाग, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल
- नायडू, पी.आर., 1997, भारत के आदिवासीविकास की समस्याएं, राधा पब्लिकेशन्स,नई दिल्ली
- तिवारी,डॉ. शिवकुमार, व शर्मा, डॉ. श्रीकमल, 2000, मध्यप्रदेश की जनजातियाँमध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

- हसनैन, नदीम , 2001 जनजातीय भारत, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
- वैदय, नरेश कुमार, 2003 जनजातीय विकास : मिथक एवं यथार्थ, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
- मुकर्जी, रविन्द्रनाथ, 2003, सामाजिक अनुसंधान, रावत पब्लिकेशन्स,जयपुर
- वैद्य, नरेश, 2003, 'जनजातीय विकास' रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं नई दिल्ली
- सिंह, लीना 2005 अनुसूचित क्षेत्रः स्वशासन एवं विकास, डिबेट, गैर सरकारी संस्था अल्कापुरी, भोपाल